INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS
Volume 3,Issue 2,February 2015
ISSN-2320-2882
ORIGINAL ARTICLE

# मानवीय चेतना का विकास : गाँधीवादी अभिगम

*डॉ. जितेन्द्र शर्मा*
*एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र*
*म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि.,चित्रकूट सतना (म.प्र.)*

*आलेख सार*

*प्रस्तुत शोध आलेख में मानवीय चेतना के विकास के सन्दर्भ में गाँधीवादी अभिगम की मीमांसा की गयी है। आज सम्पूर्ण विश्व में भोगवाद और बाजारवाद तथा मजहबी आतंकवाद की आँधी बह रही है। मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूलकर भोग का उपकरण मात्र बनकर रह गया है। उसका सम्पूर्ण जीवन, जीवन की जैविक आवश्यकताओं–आहार, निद्रा, भय और मैथुन से जुड़ी सुख सुविधाओं के आविष्कार और अधिकतम अर्जन में ही समाप्त हो जा रहा है। 'न साम्परायः प्रतिभाति बालम् प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेनमूढ़म। अयं लोकोनास्ति परइतिमानी पुनःपुनर्वश मा पद्यते मे'' की औपनिषद घोषणा सर्वत्र चरितार्थ हो रही है। ऐसे में बापू द्वारा प्रतिपादित और सेवित नैतिक एकादश व्रतों का अपने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में प्रयोग करके कोई भी मनुष्य अपनी चेतना को परिष्कृत कर सकता है, अपने क्षुद्र व्यक्तित्व को ब्राह्मी व्यक्तित्व में परिणत कर सकता है, नर से नारायण के रूप में परिवर्तित हो सकता है। फलतः वर्तमान आर्थिक भूमडलीकरण की अवधारणा को वेदान्तिक भूमण्डलीकरण की अवधारणा में परिवर्तित करने में अपने महनीय योगदान की सुनिश्चित भी कर सकता है।*

---

मनुष्य जीवन का लक्ष्य आत्मदर्शन है और उसकी सिद्धि का मुख्य एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीव–मात्र की सेवा करना है, उसमें तन्मयता और अद्वैत के दर्शन करना है।

बिना आचार के कोरा बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है जैसा कि खुशबूदार मसाला लगा हुआ मुर्दा।

मनुष्य अपने लिये क्षमा चाहता है, दूसरों के लिये न्याय। गाँधी कहता है–''हृदय–परिवर्तन का अर्थ है अपने लिये न्याय और दूसरे के लिये क्षमा।''

बापू द्वारा व्यक्त उक्त उद्‌गारों में मानवीय चेतना के विकास की परिपूर्णता का सहज खाका देखा जा सकता है। बापू न तो विविध सिद्धांतों और सम्प्रदायों की स्थापना करने वाले दार्शनिक थे और न ही मानव–मन की गुत्थियों को सुलझाने वाले मनोवैज्ञानिक ही परन्तु अपने जीवन में सत्य का प्रयोग करने वाले इस सत्यधर्मा महामानव की प्रत्येक पदचाप में मानवीय चेतना के विकास की अन्तर्कथा छुपी हुई है, जिसके जीवन के अन्तिम पड़ाव में मानवीय चेतना अपनी परिपूर्णता में प्रतिष्ठित होती है। जीवमात्र में अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा ही तो भूमा व्यक्तित्व है। एक ऐसा महान व्यक्तित्व जो धर्म, जाति रूप रंग, लिंग भाषा–वेशभूषा आदि की सीमितताओं और वर्जनाओं को तोड़कर 'अहं ब्रह्मस्मि' की स्थिति प्राप्त कर लेता है। व्यक्तित्त्व विकास विषयक् बापू के उक्त विचार 'अयं निजः परोवेति गणना लघु चेत सां। उदार चरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श का आधुनिकतम संस्करण है। सार रूप में कहें तो गांधी बीसवीं सदी का एक धर्म है। व्यक्तित्त्व विकास की

बाइबिल है; एक युग का नेतृत्व है, गाँधी देशकाल से परे है। गाँधी गौरव इतना बड़ा है कि मात्र एक व्यक्ति के बूते में नहीं आ सकता। डॉ पट्टाभिसीतारमैय्या ने ठीक ही कहा है गाँधीवाद सिद्धांतों, वादों, नियमों और सिद्धांतों का संग्रह नहीं वरन् जीवन यापन की एक शैली या जीवन दर्शन है। यह एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है अथवा जीवन की अर्वाचीन समस्याओं के लिये एक प्राचीन समाधान प्रस्तुत करता है।[1]

व्यक्तित्त्व विकास के सन्दर्भ में जहाँ तक गाँधीवादी अभिगम का प्रश्न है, आपके अनुसार नैतिकता जीवन का स्रोत है। यहाँ तक कि व्यक्ति और समाज का अस्तित्व तथा विकास भी नैतिक पथ पर आधारित है। गाँधीजी ने व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता पर सबसे अधिक बल दिया। इसके लिये उन्होंने एकादश व्रत–सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग आदि को चारित्रिक विकास के लिये अनिवार्य बताया। ''गाँधी जी के विचार में ईश्वरानुभूति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। परन्तु यह ईश्वर की अनुभूति अमूर्त तत्व नहीं है। ईश्वरानुभूति को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका है–स्वयं अपनी आत्मा या सम्पूर्ण मानवता की आत्मा में ईश्वर की अनुभूति करना। वास्तविक आत्मा या ईश्वर की अनुभूति का मार्ग दूसरों को प्यार करने में है। इस तरह प्रेम देने के लिये आवश्यक है कि दूसरों के प्रति प्रेम एवं कर्त्तव्य की भावना रखी जाये।[2] आइये बापू के एकादश व्रत और व्यक्तित्व विकास में उसकी भूमिका की मीमांसा करें–

अहिंसा – अहिंसा बापू के नैतिक दर्शन का मूलमंत्र है। आज मानवीय व्यक्तित्व में हिंसा, द्वेष, घृणा, प्रतिशोध, कुंठा और अंततः आत्महत्या की भावना जैसे दुर्गुणों का जो प्राबल्य दिखाई पड़ रहा है उसके शमन का एक ही मार्ग है कि जीवन अहिंसा के पथ से अग्रसारित हो। बापू स्वयं कहा करते थे–''Non-violence is the law of our species as violence is the law of srutes"[3]

गाँधी जी ने अहिंसा को भावात्मक एवं अभावात्मक दो अर्थों में प्रयोग किया है। मन, वाणी और कर्म से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट न देना अहिंसा का अभावात्मक अर्थ है। प्राणि मात्र के प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा प्रेम, करुणा, उदारता सहिष्णुता, क्षमा और विनम्रता का व्यवहार अहिंसा का भावात्मक अर्थ है। ''अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग, अहिंसा में दीनता, भीरूता न हो, डरकर भागना भी न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता और निश्छलता होनी चाहिए।''[4]

''क्रोध अथवा स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी प्राणी के अहित की कामना करना उसे कष्ट पहुँचाना अथवा उसकी हत्या करना हिंसा है। इसके विपरीत भलीभाँति विचार करके शांत चित्त और निःस्वार्थ भाव से किसी प्राणी के शारीरिक या आध्यात्मिक कल्याण के लिये उसे कष्ट पहुँचाना अथवा उसकी हत्या करना अहिंसा का विशुद्धतम रूप माना जा सकता है।..... हिंसा अथवा अहिंसा की अन्तिम कसौटी कर्म के मूल में निहित प्रयोजन ही है।[5]

सत्य : गाँधीजी ने सत्य को तत्व मीमांसीय और व्यावहारिक दोनों अर्थों में स्वीकार किया है। तत्वमीमांसीय सन्दर्भ में गाँधीजी की आध्यात्मिक साधना जो ईश्वर से शुरू की गयी उसका पर्यवसान 'सत्य' में हुआ। जहाँ सत्य और ईश्वर तदाकार हो गया। व्यावहारिक अर्थों में सत्य का अर्थ सत्य वाचन से है। सत्य का पालन मनसा, वाचा, कर्मणा करना चाहिये। "Truth means truth in thought, word and deed."[6]

अस्तेय : मनसा, वाचा, कर्मणा चौरवृत्ति से दूर रहना ही अस्तेय है। इतना ही नहीं बापू के मतानुसार दूसरे के धन का अपहरण करना ही चोरी नहीं है वरन् लालच या स्वार्थ से अनावश्यक रूप से किसी वस्तु का रखना तथा अनावश्यक धन का संग्रह करना भी चोरी है। ''मैं कहता हूँ कि एक प्रकार से हम सभी लोग चोर हैं। यदि मैं कोई वस्तु लेता हूँ जिसकी हमें अभी आवश्यकता नहीं है और उसे रखता हूँ तो मैं उस वस्तु को किसी अन्य से चुराता हूँ।''[7]

चौर वृत्ति को गाँधीजी ने क्लेश महामारी से भी भयानक बताया है। नागरिकों की यह प्रवृत्ति राष्ट्र के पतन का कारण बनती है। "Stealing is a disease like the plague"[8]

ब्रह्मचर्य : मन, वचन और कर्म से सभी समयों में तथा सभी स्थानों पर अपनी समस्त इन्द्रियों का पूर्ण संयम अथवा नियंत्रण ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये मनुष्य को गीता में वर्णित आसुरी प्रवृत्तियों पर रोक तथा दैवी प्रवृत्तियों को अभ्यास में लाना चाहिये।

अपरिग्रह : आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करना ही अपरिग्रह है। परिग्रह मानवीय व्यक्तित्व की गरिमा को विनष्ट करती है। उसके अन्दर लालच का भाव पैदा करती है। परिणामतः व्यक्ति भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाता है। परन्तु चूँकि आवश्यकतायें अनंत होती है और वे देशकाल सापेक्ष होती है इसीलिये गाँधी जी ने अपरिग्रह के सन्दर्भ में 'आवश्यकताओं को कम करने के दर्शन का प्रतिपादन किया। आवश्यकताओं को न्यूनतम करते हुये प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता के अनुसार ही धन का संग्रह करना चाहिये। शेष वस्तु (धन) को समाज कल्याण में लगा देना चाहिये।

अस्वाद : रसनेन्द्रिय का जीतना ही अस्वाद है। भोगों के प्रति रसनेन्द्रिय की चाहत बड़ी प्रचण्ड होती है। तभी तो बापू ने कहा है–''रसना का नियन्त्रण ब्रह्मचर्य पालन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।'' Control of palate is very closely connected with the observance of Brahmcharya[9]

व्यक्तित्व विकास में अस्वाद व्रत की बहुत बड़ी भूमिका होती है–इसके पालन से व्यक्ति बहुत सारे अनर्थों और पापों से मुक्त हो सकता है। अल्पाहार, एकाहार, शाकाहार, दुग्धाहार और फलाहार के क्रम से इस व्रत का पालन किया जा सकता है।

सत्याग्रह : सत्य पर आरूढ़ रहकर अथवा सत्य को साक्षी करके प्रेम के द्वारा कष्ट सहने के लिये तत्पर होना है। सत्य का उपासक सत्य को हिंसात्मक साधनों के द्वारा सिद्ध नहीं करता। वह स्वयं कष्ट सहकर विरोधी को असत्य मार्ग से हटाता है। सत्याग्रही घृणा को प्रेम से, असत्य को सत्य से और हिंसा को आत्मकष्ट के द्वारा जीत लेता है। गाँधी जी ने सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष को सिद्ध करने के लिये कुछ तकनीकों को भी बतलाया है। वे निम्नलिखित हैं–

अ. असहयोग, ब. सविनय अवज्ञा, स. हिजरत, द. उपवास, य. हड़ताल

परन्तु यहाँ पर उल्लेखनीय है कि उक्त तकनीकों का इस्तेमाल करते समय अहिंसा का पालन प्रत्येक स्थिति में होना चाहिये।

अभय : सच्ची अहिंसा अभय से ही हो सकती है। जब तक द्वैत (दो का भाव, ऊँच–नीच का भाव) बना रहता है तब तक भय है। द्वैत से घृणा होती है। अद्वैत से प्रेम होता है क्योंकि तब घृणा का कोई पात्र ही नहीं रह जाता। क्या छोटा क्या बड़ा, क्या ऊँच, क्या नीच अथवा धनी या निर्धन। सभी में तो परमात्मा का ही प्रकाश विद्यमान है। स्पष्ट है मानवीय चेतना का दैवी स्वरूप में रूपान्तरण में अभय की साधना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अस्पृश्यता निवारण : जब सभी जीव परमात्म सत्ता के प्रकाश हैं तो ऐसी स्थिति में क्या छोटा, क्या बड़ा अर्थात् फिर कैसी छुआछूत की भावना। 'मैं तो सिर्फ इतना चाहता हूँ कि आप अन्त्यजों को स्पर्श करें क्योंकि अन्त्यज मनुष्य है' और चाहता हूँ कि उनकी सेवा हो क्योंकि वे सेवा के लायक हैं। माता जो सेवा बालक की करती है वही सेवा वे समाज की करते हैं। उनके अछूत मानना, उनका तिरस्कार करना मानो अपना मनुष्यत्व गँवाना है।

अस्पृश्यता निवारण को बापू ने इतना महत्व दिया कि वे स्वयं अस्पृश्य के घर में पुनर्जन्म लेना चाहते थे। यदि मेरा पुनर्जन्म हो मुझे अछूत के घर में पैदा होना चाहिये जिससे मैं उनकी परेशानियों का और दुःखों का भागीदार बन सकूँ जो उन पर थोपे गये हैं। जिसमें मैं ऐसी स्थिति में अपने आप को और उन्हें मुक्ति दिला सकूँ।[10]

शारीरिक श्रम : व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिये शरीर श्रम अनिवार्य है। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास हेतु शरीर और मन दोनों का स्वस्थ रहना आवश्यक है, इसलिये शारीरिक और मानसिक श्रम दोनों करणीय है और समान रूप से उपयोगी है। शरीर श्रम को हेय समझने के कारण समाज की शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। इसी कारण समाजरूपी शरीर को छुआछूत और रंगभेद का कोढ़ लग गया है। इसीलिये बापू ने भंगी का काम करने के लिये सबको शिक्षा दी और कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम अपने घर का पाखाना जरूर अपने हाथ से साफ करना चाहिये। चरखा कातना, बुनना तथा अन्य कुटीर उद्योगों को भी करने की शिक्षा गाँधीजी ने इसी प्रसंग में दी।

सर्व धर्म समभाव : दुनिया के समस्त धर्म परमेश्वर की प्राप्ति के पृथक–पृथक् मार्ग हैं। अतः अपनी रुचि–वैचित्र्य के अनुसार किसी भी धर्म को स्वीकार किया जा सकता है। न कोई धर्म छोटा है और न बड़ा। अस्तु, सभी धर्मों के प्रति समान रूप से आदर का भाव रखना चाहिये। सभी धर्म एक दूसरे के साथ ओतप्रोत हैं। प्रत्येक धर्म में कई विशेषतायें हैं। किन्तु एक धर्म दूसरे से श्रेष्ठ नहीं। जो एक में है वह दूसरे में नहीं। इसलिये एक धर्म दूसरे धर्म का पूरक है।[11] अपनी बात को सुस्पष्ट करते हुये गाँधी जी आगे कहते है–तात्कालिक आवश्यकता यह नहीं है कि एक धर्म हो बल्कि यह है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो। हम निर्जीव समानता नहीं करना चाहते परन्तु विविधता में एकता चाहते हैं। हमारा हृदय जब विविधताओं को स्वीकार करने का अभ्यस्त हो जायेगा तब समानता के सन्दर्भ में धार्मिक एकता का स्वरूप विकसित होगा। ईश्वर में सजीव श्रद्धा से लक्ष्य की प्राप्ति सरल हो जाती है ईश्वर में सजीव श्रद्धा होने का अर्थ है मानव जाति का भ्रातृत्व स्वीकार करना। इसका अर्थ सब धर्मों के लिये समान आदर भाव भी है।

स्वदेशी : इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने देश से प्रेम करे और अपने देश में उत्पन्न तथा बनी हुई वस्तुओं का ही उपयोग करें। स्वदेश और स्वदेशी से प्यार करने का मतलब विदेश और विदेशी वस्तुओं से घृणा नहीं है। हम अपनी माँ से प्रेम करते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम दूसरों की माँ से द्वेष करते हैं। स्वदेशी धर्म पालने वाला परदेशी से कभी द्वेष नहीं करता..... जो वस्तु स्वदेश में नहीं बनती अथवा महाकष्ट से बनती है उसे परदेशी के द्वेष के कारण कोई अपने देश में बनाने बैठ जाय तो उसमें स्वदेशी धर्म नहीं है।

वस्तुतः मानवीय चेतना परमात्म चेतना का अंश है या अद्वैत वेदान्त की भाषा में कहें तो आत्मा स्वयं परमात्मा हैं। परमात्म रूप में आत्मा एक है। ऐसी स्थिति में परस्पर रागद्वेष और भेदभाव घृणा और वैमनस्यता क्यों? वेदान्त की भाषा में कहें तो अज्ञानता या अविद्या ही पारस्परिक द्वेष और भेद का कारण है। काम, क्रोध, लोभ, मोह की सांसारिक पंकिल गलियों में गुजरते हुये मनुष्य स्वयं को जाति रूप, रंग, लिंग, भाषा–वेशभूषा, आदि की सीमितताओं में बाँध लेता है। परिणामतः अपने भूमा या ब्राह्मी व्यक्तित्व को भूलकर सामान्य जीव जैसा व्यवहार करने लगता है। ऐसी स्थिति में वह प्रत्येक कार्य अपने और पराये के मापदंड के आधार पर करता है। गाँधी जी द्वारा स्वयं के जीवन में किया गया सत्य और अहिंसा का प्रयोग मानवीय चेतना को उक्त सीमितताओं से ऊपर उठाकर ब्राह्मी स्वरूप का दर्शन कराना है। उल्लेखनीय है बापू न तो कथावाचक है और न ऐसे आधुनिक नेता जिनके जीवन में कथनी और करनी का भेद है। वे तो उन नैतिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं, जिनके व्यवहार से मनुष्य ब्राह्मी व्यक्तित्व की सिद्धि कर सकता है। वे सिद्धांतों का प्रतिपादन ही नहीं करते हैं बल्कि सर्वप्रथम उसका अपने निजी जीवन में प्रयोग भी करते हैं। यही तो गाँधी दर्शन की नव्यता और महानता है। गाँधीजी ने स्वयं द्वारा प्रतिपादित एकादश नैतिक व्रतों को यावज्जीवन व्यवहार किया। आज सम्पूर्ण विश्व में चाहे भ्रष्टाचार, व्यभिचार या बलात्कार की समस्या हो या हो मजहबी आतंकवाद की अथवा हो आर्थिक वैषम्यता की समस्या सभी का निदान तो एकादश व्रत में निहित है। यहाँ तक कि वैश्विक अशांति और पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या का भी एकादश व्रत में सहज निदान खोजा जा सकता है। अगर शशीरश्रम, स्वदेशी और अस्पृश्यता निवारण जैसे मूल्यों को मानव जाति अपना ले तो विश्व से बेकारी,

बेगारी, वेबशी और लाचारी सहित स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। अंत में हम साररूप में कह सकते हैं कि गाँधी द्वारा एकादश व्रत के रूप में प्रतिपादित नैतिक सिद्धांतों में मानवीय चेतना के परिष्कार के मूलमन्त्र छिपे हुये हैं। इन नैतिक सिद्धांतों का पालन करके समाज में शान्ति की सरिता और विश्व में विकास की गंगा प्रवाहित की जा सकती है।

देखना है भोगवाद, बाजारवाद तथा साम्राज्यवाद के व्यामोह में उलझी हुई मानव प्रजाति गाँधी नैतिक दर्शन के दिव्य आलोक में अपने कल्याणपथ पर अग्रसर हो पाती है या नहीं।

सन्दर्भ सूची

*1 डॉ. जितेन्द्र शर्मा–गांधी दर्शन मीमांसा, पृ.28, बी.एस.शर्मा एण्ड ब्रदर्स आगरा, 2006*
*2 दिवाकर पाठक–भारतीय नीति शास्त्र, पृ.138, बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1992*
*3 महात्मा गांधी–यंग इण्डिया, अगस्त 11, 1920*
*4 महात्मा गांधी–हिन्दी नवजीवन, 20 सितम्बर 1928*
*5 महात्मा गांधी–हिन्दू धर्म, पृ.219*
*6 Anil Datta Mishra-Ouotes of Mahatma Gandhi, p161, Abhijeet publication, Delhi.*
*7 M.K. Gandhi-Speeches and writings of M.K. Gandhi Madras 1934, p.284*
*8 Anil Datta Mishra-Ouotes of Mahatma Gandhi, p147, Abhijeet publication, Delhi.*
*9 Yarvada Mandir, p15*
*10 यंग इण्डिया, 4 मई 1921*
*11 हरिजन सेवक, 31 मार्च 1993*